



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में रंगमंचीयता

शुभम कुमार सेन (शोध अध्येता)

हिन्दी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय

विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.) 484887, भारत

डॉ. पूनम पाण्डेय (सहायक आचार्य)

हिन्दी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय

जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)

शोध सारांश – आधुनिक हिन्दी नाट्य जगत के नाटककार सुरेन्द्र वर्मा अपने रंगशिल्प को लेकर विख्यात हैं। इन्होंने नाटकों की मंचीयता के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग संयोजन का प्रयोग किया है। अपने नाटकों की सार्थकता को उन्होंने अपने रंगमंचीय कौशल के आधार पर नाट्य संसार में प्रतिष्ठित किया है। नाटककार जब भी नाटक की रचना करता है तो उसके मन मस्तिष्क में उसकी रंगमंचीयता को ध्यान में रखकर ही लिखता है। समय के साथ-साथ मंचन का विन्यास भी बदलता रहता है। पहले जिस तरह से नाटकों को प्रस्तुति हुआ करती थी आज वैसी नहीं होती है। आधुनिकता के प्रभाव को नाटकों की रंगमंचीयता पर भी भलीभाँति देखा जा सकता है। सुरेन्द्र वर्मा के नाटक भले ही ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों पर आधारित क्यों न हो उसके मंचन में आधुनिकता झलक ही आती है। मंच-विन्यास, ध्वनि-विन्यास, अभिनय, रंग-विन्यास आदि को लेकर नाटककार अपने दृष्टिकोण से उनका समावेश करता है। किसी नाटक की रंगमंचीयता की स्पष्टता नाटककार के शिल्प एवं भाषा शैली पर निर्भर करती है। एक ही नाटक की प्रस्तुति अलग-अलग तरीके से हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि नाटककार जिस तरह से दिखाने की कोशिश कर रहा है; उसका मंचन क्या उसी तरह से हो रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र इसी संदर्भ में है कि सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों में रंगमंचीयता के लिए किन-किन रंग उपादानों का सहारा लिया है।

बीज शब्द – रंगमंच, नाटक, रंगशिल्प, मंचन, अभिनय, विन्यास, रंग परिदृश्य, रंगमंचीयता, नृत्य, नाट्य।

मनुष्य के इतिहास के साथ ही रंगमंच का भी इतिहास जुड़ा हुआ है। रंगमंच का उद्भव उस युग से देखा जा सकता है, जब से मनुष्य अपने आरंभिक जीवन में शिकार के लिए भटकता था और जानवर का शिकार करके अपने कबीले में लाता था। रात्रि के समय आग जलाकर उसके चारों ओर कबीले के लोग एकत्रित होकर उस हाव-भाव का प्रदर्शन करते जैसा शिकार के समय घटित हुआ। उन पलों को याद करते हुए उसकी प्रस्तुति नाच-गाने के साथ अभिनय करते हुए की जाती थी। इस तरह लोगों का स्थान विशेष पर अपने आप को झूमते-लहराते हुए दिखाना, उस स्थान को अपने आप में रंगमंच में परिवर्तित कर देना था।

रंगमंच से आशय उस स्थान या जगह से है जहाँ नाट्य, नृत्य, अभिनय या खेल आदि हो। रंगमंच के संदर्भ में श्री राहुल सिद्धार्थ का कहना है – “रंगमंच दो शब्दों रंग एवं मंच से बना है। मंच से अभिप्राय सामान्यतः उस विशिष्ट स्थान से लिया जा सकता है; जहाँ नाटक का अभिनय किया जाता है। मंच के विभिन्न प्रकार हो सकते हैं। अब दूसरा शब्द ‘रंग’ है जिसका अर्थ विभिन्न प्रकार की प्रकाश व्यवस्था, पोशाकें, पर्दे जिनका हम सभी अपने जीवन में साक्षात्कार करते हैं, रंगमंच सम्मिलित रूप से वह विशिष्ट स्थान है, जहाँ जीवन की विभिन्न अनुभूतियों को समग्रता में प्रस्तुत किया जाता है।”¹ नाटक के विषय को लेकर जब रंगमंच की बात की जाती है तब मंच से अभिप्राय उस विशेष स्थान से होता है, जहाँ पर नाटक के पात्र अपने अभिनय कौशल की प्रस्तुति देते हैं।

नाटक एक दृश्यमान विधा है। जब तक नाटक का मंचन न किया गया हो तब तक वह अधूरा होता है। मंच पर खेलने के बाद ही किसी नाटक की सार्थकता सिद्ध होती है, उसमें प्राण शक्ति की प्रतिष्ठा होती है। रंगमंच सिर्फ एक माध्यम है जो किसी नाटक को प्रस्तुत करने का, उसे दर्शकों तक पहुँचाने का जरिया बनता है। जीवन के ही भाँति रंगमंच की भी गतिशीलता होती है। जे.बी. प्रीस्टल के अनुसार- “नाटककार रंगमंच के लिए लिखता है। वह सही मायने में नाटककार ही नहीं जो अपना नाटक पाठकों के लिए लिखता है, प्रस्तुतीकरण के लिए नहीं। नाट्य निर्मिती के समय नाटककार का ध्यान छापने वाले की ओर नहीं होता, बल्कि अभिनेतागण पर होता है; पाठकों पर नहीं, बल्कि प्रेक्षकों पर होता है। वह रंगमंच से इतना अधिक जुड़ा हुआ एवं ‘बंधा हुआ’ होता है, जितना रसोइयाँ रसोईघर से जुड़ा हुआ होता है।

उसका अंतिम हेतु, जिसे हम 'नाट्यानुभाव' कहते हैं उसका निर्माण करना होता है।² नाटक की सार्थकता को उसके मंचन से जोड़ा गया है। जब तक उसकी रंगमंचीयता का आँकलन न कर लिया जाए तब तक वह अधूरा है।

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों की रचना रंगमंचीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए की है। उन्होंने अपने नाटक के प्रत्येक दृश्य को अभिनय की दृष्टि से परखते हुए लिखे हैं। आवश्यकतानुसार मंच से संबंधित संकेतों का भी प्रयोग अपने नाटकों में किया है। “अंधकार। हम एक पुरुषाकृति का आभास, जो धीरे-धीरे मंच पर टहलती रहती है। नेपथ्य में पहले एक और फिर अनेक पक्षियों की चहचहाहट। दूर और कुछ पास से क्रमशः तीन पुरुष स्वर ‘सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक’। नेपथ्य में तत्काल वीणा पर प्रातः कालीन रागिनी का प्रारंभ साथ ही हड़बड़ाई हुई महतरिका का प्रवेश।”³ नाटक की मंचीयता को ध्यान में रखते हुए एक अभिनेता इस दृश्य का अभिनय करने में सक्षम होता है। जिससे नाटककार अपने उद्देश्य को प्रेक्षक तक पहुंचाने में सफल हो जाता है।

अभिनय करने के कई तरीके होते हैं जिनके माध्यम से कलाकार अपनी प्रतिभा का सभी के सामने प्रस्तुति देता है। मौन एक सशक्त माध्यम होता है जब अभिव्यक्ति करने में असमर्थता हो। अभिनेता अपनी बात को कहने में समर्थ होता है फिर चाहे वो शब्दों को लेकर हो या मूक रहकर। हालाँकि मौन को समझना, शब्द के मुकाबले थोड़ा कठिन होता है क्योंकि उसमें अभिनेता के एक-एक हाव-भाव को समझना होता है। यहाँ नाटककार का शिल्प ही काम आता है कि उसके नाटक में रंगमंचीयता किस स्तर तक सुलभ है। अभिनेयता का स्तर जितना परिपक्व होगा दर्शकों को समझने में उतनी ही सरलता होगी। मौन को महत्व देते हुए फर्नाल्ड कहते हैं – “एक प्रभाव के प्रति प्रेक्षक पूर्णतया प्रक्रिया कर सके, इसके लिए उसे समय मिलना चाहिए, जिससे कि वह उस पूर्ण प्रभाव डालना चाहती है और जो कि नाटकीय महत्व के कारण विशिष्ट दबाव की अपेक्षा करती है को नाटकीय विराम का अनुसरण कर होगा, जिससे कि वह विशेष प्रभाव प्रेक्षकों की चेतना में विलय हो जाने का समय पा सके।”⁴

सुरेन्द्र वर्मा एक मंजे हुए नाटककार, निर्देशक तथा रंगमंच की बेहतरीन समझ रखने वाले व्यक्ति हैं। उनके नाटकों की रंगमंचीयता को देख कर ही उनकी कुशलता का अंदाज लगाया जा सकता है। सुरेन्द्र वर्मा ने स्वयं अपने नाटकों के दृश्य बंध तैयार कर नाटकों को मंच पर उतारा है। जैसे ‘सेतुबंध’ नाटक में – “कक्ष के केन्द्रीय भाग में आमने-सामने दो रत्नजटित स्तम्भ। सामने और बायीं ओर एक-एक गवाक्ष। सामनेवाले गवाक्ष के दोनों ओर दो-दो नागदंत। एक पर चँवर, शेष पर स्वर्ण एवं मणियों के आभूषण। एक द्वार दायीं ओर, जो प्राग्ग्रीवक में खुलता है। दूसरा बायीं ओर, जो शयनकक्ष में खुलता है। दायीं दीवार से सटे, एक के बाद एक तीन भद्रासना। मुक्ताशैल की एक चौकी दायीं दीवार के निकट और एक बायीं के। एक पर पुष्पमालाएं। प्रकाश। नेपथ्य में घोड़े की हिनहिनाहट। दौवारिकी, मुख्य प्रतिहारी, कुछ सहेज रही हैं। दायीं ओर से विभावती, राजमहिषी, का प्रवेश।”⁵ नाटक की पात्र योजना, ध्वनि संयोजन, प्रकाश योजना आदि का समावेश इस नाटक में है। राजमहल का दृश्य दिखने के लिए रत्नजटित स्तम्भ, गवाक्ष, नागदंत, चँवर, आभूषण आदि का उपस्थिति है।

‘नायक-खलनायक-विदूषक’ में नेपथ्य की उपस्थिति ही महत्वपूर्ण है, जिसके चलते किसी विशेष मंच की आवश्यकता नहीं है। सुरेन्द्र वर्मा इस नाटक में कर्पिजल नामक पात्र की मनोदशा को लेकर संवाद लिखते हैं – “क्यों नहीं!..। एक कारण तो यही है कि इस पात्र से मैं बुरी तरह ऊब चुका हूँ। इसकी भूमिका एक ऐसा मोदक है, जिसे मैंने सैंकड़ों बार निगला है, लेकिन जो बार-बार मेरे सामने आ जाता है- वही रूप, वही आकार, वही गंध, वही संवाद।... नाट्यशाला के प्रत्येक कलाकार के लिए नाटक बदलता है, क्योंकि उसका पात्र बदलता है, पात्र का व्यक्तित्व बदलता है।... (संकेत सहित) आर्य चक्रपालित !... जो कभी दरिद्र चारुदत्त बनते हैं, कभी वैभवशाली दुष्यंत, कभी राजनीति के वात्याचक में घिरे हुए चन्द्रगुप्त, कभी कुरुक्षेत्र के महापराक्रमी भीम... (संकेत सहित) कुमारी अंबरमाला। जो कभी वसंतसेना बनकर नगरवधू की मोहक छवि पा लेती हैं, कभी शकुंतला के रूप में निश्छल सौन्दर्य की प्रतिमा हो जाती हैं, कभी वासवदत्ता बनकर कलाविलासी व्यक्तित्व को वाणी देती हैं, कभी द्रोपदी के रूप में लटें बिखराये प्रतिहिंसा की लपलपाती ज्वाला बन जाती हैं।... इन सभी पात्रों के चरित्र में उतार-चढ़ाव है, मानवीय मनोभावों के अनेकानेक प्रकारों की अभिव्यक्ति है, अलग-अलग स्तरों से जीवन के यथार्थ का साक्षात्कार है, इसलिए ये भूमिकाएं किसी भी कलाकार के लिए चुनौती बनकर आती हैं, उसकी रंगसाधना को सार्थक...।”⁶ इस कथन में नाटककार ने कर्पिजल के बार-बार विदूषक की भूमिका न निभाने को लेकर सहमति दिखाई है। वह अपने पक्ष के समर्थन में बात रखता है और अन्य कलाकारों की भूमिका को इंगित करता है। जिसे लेकर सुरेन्द्र वर्मा ने उसके नाटकीय अभिनय को एक अलग रंग में दिखाया है।

‘सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण’ तीन अंकीय, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया नाटक है। इस नाटक की खास बात यह है कि सुरेन्द्र वर्मा ने सम्पूर्ण नाटक को एक ही दृश्यबंध में तैयार किया है- ‘राजप्रासाद का शयनकक्ष। मंच की अगली सीमा पर दायीं और बायीं ओर एक-एक द्वार। दायें के बाद मदिराकोष्ठ, बायें के बाद चौकी पर दर्पण एवं प्रसाधन सामग्री, सामने आसदी। बायीं ओर बड़ा जालगवाक्ष, बायीं तथा सामने की दीवार के लगभग मध्य भाग से लेकर दोनों (दीवारों) के सम्मिलन तक। मंच के बीचों बीच ऊपर से लटकता

मुक्ताकलापा सामने की दीवार के पास शैया। कुछ आसन एवं चौकियाँ।”⁷ नाटक के दृश्य को लेकर सुरेन्द्र वर्मा ने पहले से ही परिकल्पना तैयार कर रखी है जिसे लेकर ही सारा नाटक चलता है। इतना ही नहीं इसी नाटक में शीलवती के नियोग को लेकर जो प्रसंग चलता है उसमें ओक्काक की मनः स्थिति को भी सुरेन्द्र वर्मा ने इस तरह व्यक्त किया है कि कलाकार को अभिनय समझने में कोई समस्या भी नहीं होती। अंतर्द्वन्द्व से घिरे ओक्काक की मनोदशा उन्हें बेचैन करती है। ओक्काक तथा महत्तरिका के मध्य का संवाद जो उदास वातावरण की निर्मिती करता है-

“महत्तरिका : (धीरे-धीरे) खाली मंडप... हवा में धीरे-धीरे लहराते हुए तोरण और बंदनवार... स्तंभों से लिपटी हुई पुष्पमालाएं... जहाँ-तहाँ टूटी हुई... एक-दो लुढ़के हुए मंगलकलश... (विराम) सब कुछ मौन... स्तब्ध...।

ओक्काक : (करुण मुस्कान से) उत्सव के बाद का सूनापन। (मदिराकोष्ठ तक आता है। एक चषक भरता है। पीता है। प्रतिहारी का प्रवेश)।”⁸

नाटक की सार्थकता उसके मंचन से आँकी जाती है। नाटक की रचना भले ही एक बार होती है लेकिन उसको खेला कई बार जाता है। नाटक की रंगमंचीयता उसके कलाकार के अभिनय से जुड़ी होती है। अगर अभिनेता उसको सही ढंग से प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे तो नाटक भले ही कितना भी अच्छा क्यों न हो वह असफल माना जाता है। कलाकार का अभिनय कौशल नाटक को नाटक बनने में सहयोग प्रदान करता है। भारतीय नाट्य शास्त्र में अभिनय के प्रमुख चार भेद माने गए हैं- आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य। सुरेन्द्र वर्मा ने इन चारों प्रकार के अभिनय संबंधित रंगनिर्देश अपने नाटक में दिए हैं।

आंगिक अभिनय के अंतर्गत सुरेन्द्र वर्मा ने पात्रों के क्रियाकलापों के संकेत दिए हैं। ‘आठवाँ सर्ग’ नाटक में पात्रों की भाव-भंगिमाओं ने अभिनय की कला को निखारा है जो आंगिक अभिनय के क्रियाकलापों में सहयोग प्रदान करती है- “प्रियंगु : (संकेत से पास बुलाती है। अपनी माला उतारकर उसके गले में पहना देती है। एक उँगली से उसकी चिबुक उठाकर) इसीलिए तो तेरा नाम प्रियंवदा हैं! (प्रियंवदा हँसकर एक पग पीछे आती है। पल-भर के लिए आत्मीय मुस्कान से कालिदास की तरफ देखती है। उद्यान में भाग जाती है। प्रियंगु सामने वाले द्वार तक पहुँचती है, एक दृष्टि उद्यान पर डालती है, मुड़कर द्वार से टिक जाती है। कालिदास की ओर देखती है। आँखें झुका लेती है। मीठे स्वर में।)”⁹ उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि नाटककार प्रियंगु की मनः स्थिति को उसकी शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास कर रहा है। उसकी आंगिक क्रियाओं को बताते हुई नाटक में गति प्रदान करने का कार्य किया है। आंगिक अभिनय के माध्यम से भाव भंगिमाओं को मूर्त किया है।

नाटक में वाचिक अभिनय भाषा की उत्कृष्टता पर निर्भर करता है। सेतुबंध, नायक खलनायक विदूषक, द्रोपदी, आदि नाटकों में तत्सम, तद्भव, अरबी, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग सुरेन्द्र वर्मा ने किया है। द्रोपदी नाटक में सुरेखा और मनमोहन के मध्य के संवाद को लेकर सुरेखा का जवाब होता है। “मैं तो कभी-कभी हैरान रह जाती हूँ तुम्हारे बर्ताव से। यकीन ही नहीं आता कि जिससे बात कर रही हूँ, वो मेरा शौहर है। मैं लगातार चीखे जा रही हूँ कि मैं रिखी हूँ रिखी, और आप उधर से बड़े पुरतकल्लुफ़ अंदाज में फर्मा रहे हैं – असिस्टेंट मैनेजर बोल रहा हूँ। मैं कह रही हूँ कि दो दिन की छुट्टी पर रहेगा गोपाल। आपका जवाब है कि भोपाल में तो हमारी कोई ब्रांच नहीं।”

सात्विक अभिनय मन के भाव और स्वरों का चित्रण है। नाटक सिर्फ शारीरिक चेष्टाओं से पूरा नहीं होता अपितु मन के भावों के परिवर्तित स्वरूपों पर भी आधारित होता है। सुरेन्द्र वर्मा ने क्रोध, रोमांच, प्रलाप, अश्रु, वियोग आदि भाव को अपने नाटकों में उद्भूत किया है। ‘सूर्य की अंतिम किरण...’ में शीलवती और प्रतोष के मध्य के संबंधों का चित्रण रोमांचक स्मित का चित्रण है – “प्रतोष : (संतुष्ट स्मित से कुछ क्षणों तक शीलवती की ओर देखता रहता है झुककर) उठो!

(उठाता है। शीलवती कुछ चमत्कृत-सी है। प्रतोष की ओर देखती है फिर उसके दोनों हाथों की ओर, जो उसके बाहुमूल थामे हैं। प्रतोष धीरे से अपने हाथ थाम लेता है।)

शीलवती : (अभिभूत-सी) कैसा अनोखा-सा है तुम्हारा स्पर्श...।

प्रतोष : (नासमझी से) क्या?

शीलवती (बाहुमूल की ओर देखते हुए) कितना उष्ण... जैसे कुछ जीवित।

प्रतोष : (हल्की मुस्कान से) कैसी बातें कर रही हो।

शीलवती : (किंचित आवेश से) देखो, अभी तक मेरी त्वचा पर स्पंदन...

(मुग्ध-सी उस स्थान पर अपना कपोल रंगड़ती है, अधरों से छूती है। कुछ क्षण बाद आँखें उठाती है। दृष्टि मिलने पर प्रतोष समझने के ढंग से मुस्कराता है, अपनी बाँहें फैलता है। शीलवती चुपचाप सिमट आती है, उसके सीने पर सिर टिका लेती है। कुछ क्षण बाद मुंह ऊपर उठाती है, प्रतोष झुकने लगता है।)¹⁰

आहार्य अभिनय के अंतर्गत वेशभूषा संबंधित प्रयोगों का समावेश है। इसमें वेशभूषा, शृंगार, आभूषण, मुकुट, रंग आदि का सूक्ष्मता से ध्यान दिया जाता है। हर पात्र के हिसाब से उसको उसी के तरह की सामग्री उपलब्ध कराई जाती है। राजा को राजा की पोशाक तो भिखारी को भिखारी का लिबास। दाढ़ी-मूँछ से लेकर सफाचट तक प्रत्येक किरदार का अपना स्वरूप होता है। जैसे द्रोपदी नाटक के किरदार है – “मनमोहन, सफेद नकाबवाला (बैसाखी के साथ), काले नकाबवाला, पीले नकाबवाला, लाल नकाबवाला। (इन पाँचों की वेशभूषा बिल्कुल एक जैसी चारों नकाबवालों के हाथ में दस्ताने)”¹¹

नाटक में गीत योजना नाटक को मनोरम तथा आनंदमय बनाती है। नाट्यशास्त्र में भी गीतों का विधान सुनिश्चित है। हिन्दी नाट्य परंपरा में गीतों की प्रचुरता देखी गई है। उदाहरण के लिए भारतेन्दु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद के नाटक। सुरेन्द्र वर्मा भी अपने नाटक में गीतों को शामिल कर उसकी रंगमंचीयता में एक बिन्दु और जोड़ देते हैं। ‘शकुंतला की अँगूठी’ नाटक में शची तीर्थ में शकुंतला की अँगूठी गिरने के अभिनय का अभ्यास हो रहा है। वहाँ चमन के द्वारा गीत कुछ इस तरह गया जाता है –

“चमन : नहीं, कदम बढ़ाओ मत/ शकुंतला नहाओं मत/ शची का तीर्थ ठीक है/ तलाशे पुण्य ठीक है/ ये दर्द का मुकाम है/ फरेब का निजाम है/ जरा कदम बचा के चल/ जरा नज़र हटा के चल/ बजाते खुद सवाब तू/ अरे हाँ लाजवाब तू/ कण्व की दुखतर है तू/ जमीं का अखतर है तू/ इन पनियों की पांत में/ सितारे तेरी घात में/ ये मातमी दहाना है/ ये सोग का फसाना है/ इस चाल में तुम जाओ मत/ नहीं, कदम बढ़ाओ मत...”¹²

रंगमंचीयता में सूत्रधार को लेकर भी अपनी परंपरा है। संस्कृत नाटकों में यह परंपरा देखने को मिलती है। किन्तु हिन्दी नाटकों में सूत्रधार की परंपरा विलुप्त होने की कगार पर है। सुरेन्द्र वर्मा के ‘नायक खलनायक विदूषक’, ‘रति का कंगन’, और ‘शकुंतला की अँगूठी’ नाटक में सूत्रधार की परंपरा का निर्वाह हुआ है। सूत्रधार नाटक के प्रारंभ होने से पहले मंच पर आकर प्रेक्षक तथा रंगमंडली के मध्य भूमिका का निर्माण कर दोनों को जोड़ने का काम करता है। ‘नायक खलनायक विदूषक’ नाटक के शुरुआत में सूत्रधार आता है। वह नाटक की भूमिका का निर्वहन करता है – (रंगमंच। एक आसन। प्रकाश होने पर सूत्रधार का प्रवेश। हाथ की पुस्तक आसन पर रख देता है। पीछे की तरफ बढ़ता है, यकायक ठिठक जाता है।)

सूत्रधार : (एक ओर देखते हुए) स्थापक!... स्थापक!

स्थापक : (नेपथ्य से) श्रीमान। (प्रवेश)

सूत्रधार : (संकेत और मंद समित-सहित) तनिक देखो तो! रंगपीठ पर धूल की कैसी रंगोली सजी है।)

स्थापक : हर जगह यही हाल है, महोदय! महिलाओं के वेशभूषा-कक्ष में तो एक चिड़िया ने घोंसला तक बना लिया है। (दर्शकों की ओर बढ़ आता है। ऊँचे स्वर में) पारिपार्श्विक!”¹³

नाटककार ने अपने नाटक के रंगमंच के लिए उन सभी तत्वों को प्रयोग किया है जो उसकी रंगमंचीयता को अनुकूल बनाता है। सुरेन्द्र वर्मा ने उन तत्वों के माध्यम से अनेक बातों को प्रेक्षकों के समक्ष रखा है। जिससे उनकी रंगमंचीय चेतना का भी पता चलता है। सुरेन्द्र वर्मा ‘नायक खलनायक विदूषक’ नाटक में अन्य रंगमंचीय तत्व के अंतर्गत लिखते हैं- “महामंत्री और नट का एक-एक ओर से प्रस्थान सूत्रधार टोकरी से सुई-धागा लेकर माला गुँथने लगता है। स्थापक झाड़ू लिये आता है और हल्के हाथों से मंच का प्रक्षालन करने लगता है। आश्रमवासी की अधूरी रूप-सज्जा के हड़बड़ाये हुए दूसरे नट का प्रवेश।”¹⁴

इतना ही नहीं सुरेन्द्र वर्मा भाव और मुद्रा संबंधी संकेतों को भी भली भांति समझते थे। कहा किस पात्र को गहरी सांस लेना है, किसे फीकी मुस्कान दिखाना है, मंद भरा स्वर, क्रोध, झुंझलाहट, बौखलापन आदि को बखूबी प्रस्तुत करना जानते थे।

“कालिदास : (मृदु स्वर में) प्रियंगु...!

(प्रियंगु सलज्ज स्मित से सिर और झुका लेती है। कालिदास निकट आता है। प्रियंगु की दोनों बाँहें थाम लेता है। उसे अपनी ओर घुमाता है। कपोलों पर हथेलियाँ रख, चेहरा ऊपर उठाता है। प्रियंगु पलकें बंद कर लेती है। कालिदास नेह-भरी आँखों से उसकी ओर देखता है।... उद्यान वाले द्वार से नुपूरों की झंकार सहित प्रियंवदा का लगभग दौड़ते हुए प्रवेश। दोनों अचकचाकर अलग हो जाते हैं।)”¹⁵

निष्कर्ष – उपरोक्त विवरण के आलोक में स्पष्ट होता है कि सुरेन्द्र वर्मा के लगभग सभी नाटकों का मंचन हो सकता है और हुआ है। जिसमें से ‘सूर्य की अंतिम किरण...’ नाटक को तो कई बार खेला भी गया है। रंगमंचीयता के सिद्धांत उनके नाटकों में स्पष्ट तौर पर नज़र आते हैं। प्रत्येक दृश्य की अपने आप में पूर्ण दिखने के साथ उसके मंचन में भी सरलता झलकती है। संगीत, ध्वनि, प्रकाश, रंग-संयोजन, संकेत आदि अन्य रंग-उपादनों का ध्यान सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों में रखा है और रंगमंचीयता को यथा स्थान स्वरूप प्रदत्त किया है।

संदर्भ सूची –

- ¹ राहुल सिद्धार्थ, सुरेन्द्र वर्मा : नाट्य संभावनाएं एवं रंग प्रयोग, श्री नटराज प्रकाशन, 2009, पृ. 105-106
- ² जे. बी. ग्रीस्टल, नाटककार की कला, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, 1984, पृ. 13
- ³ सुरेन्द्र वर्मा, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2021 पृ. 59
- ⁴ डॉ. विजयपाल, सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध, नीरज बुक सेंटर, 2013, पृ. 133
- ⁵ सुरेन्द्र वर्मा, तीन नाटक (सेतुबंध), वाणी प्रकाशन, 1999, पृ. 15
- ⁶ सुरेन्द्र वर्मा, तीन नाटक (नायक खलनायक विदूषक), वाणी प्रकाशन, 1999, पृ. 57
- ⁷ सुरेन्द्र वर्मा, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2021 पृ. 13
- ⁸ सुरेन्द्र वर्मा, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, भारतीय ज्ञानपीठ, 2021, पृ. 40
- ⁹ सुरेन्द्र वर्मा, आठवाँ सर्ग, वाणी प्रकाशन, 2022, पृ. 27
- ¹⁰ सुरेन्द्र वर्मा, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, भारतीय ज्ञानपीठ, 2021, पृ. 49
- ¹¹ सुरेन्द्र वर्मा, तीन नाटक (द्रोपदी), वाणी प्रकाशन, 1999, पृ. 72
- ¹² सुरेन्द्र वर्मा, शकुंतला की अँगूठी, वाणी प्रकाशन, 2022, पृ. 43
- ¹³ सुरेन्द्र वर्मा, तीन नाटक (नायक खलनायक विदूषक), वाणी प्रकाशन, 1999, पृ. 41
- ¹⁴ सुरेन्द्र वर्मा, तीन नाटक (नायक खलनायक विदूषक), वाणी प्रकाशन, 1999, पृ. 44
- ¹⁵ सुरेन्द्र वर्मा, आठवाँ सर्ग, वाणी प्रकाशन, 2022, पृ. 27

